अनुक्रम

तमिल

योगी शुद्धानद भारती
रूपान्तरकार: श्री इलाचन्द्र जोशी

तेलुगु

श्री जी० जाषुआ
रूपान्तरकार: श्री हसकुमार तिवारी

पजाबी

श्री मोहन सिंह
रूपान्तरकार. श्री हरिकृष्ण प्रेमी

बगला

श्री प्रेमेन्द्र मित्र
रूपान्तरकार' श्री भवानी प्रसाद मिश्र

मराठी

श्री बी० बी० बोरकर
रूपान्तरकार. श्री गिरिजाकुमार माथुर

मलयालम

श्री जी० शकर कुरुप्प
रूपान्तरकार: डा० हरिवशराय बच्चन

हिन्दी

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
श्री सुमित्रानदन पत
श्री भगवतीचरण वर्मा
डा० हरिवशराय बच्चन

आमुख

यह दूसरा अवसर था जब कि आकाशवाणी की ओर से एक अखिल-भारतीय कविसभा का आयोजन हुआ और हमारी राजधानी मे, गणतत्र दिवस के उपलक्ष्य में, २५ जनवरी, १९५७ को भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के प्रतिनिधि कविगण, एक मच पर पधारे। यह कविसभा हमारी नई आजादी, हमारे देश की विशालता और एकता और हमारी नई उमंगों की प्रतीक थी।

इस समारोह मे हमारे कवियों ने हमारी साधारण जनता का अपनी कविताओं मे अभिनन्दन किया और भारत की राजभाषा हिन्दी ने, देश की विभिन्न भाषाओं की कविताओं के सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत करके, इन अन्य भाषाओ का अभिनन्दन किया।

इस अवसर पर पढी गई कविताओं की विविधता विशेष रूप से दर्शनीय थी। प्रस्तुत सकलन मे पाठको को विशाल भारत देश की रंगारंग प्रकृति और और बहुविध जीवन का सूक्ष्म परिचय मिलेगा। साथ ही उन्हें उस अतर्धारा का ससर्ग भी प्राप्त होगा जो आज भारतीय कवि के मानस मे प्रवाहित हो रही है। पाठक इन कविताओं में देखेंगे कि आज का भारतीय कवि प्रकृति की चुनौती को स्वीकार करने वाले कर्मठ मानव का अभिनदन कर रहा है। आज वह 'विशेष' का मोह छोड कर 'साधारण' को अपने हृदय, तथा सामाजिक स्तर पर भी, आदरणीय स्थान दिलाने के लिए प्रयत्नशील है। उसके आगामी समाज के स्वप्न भी इसी रग में ढले हैं। वस्तुतः यह प्रवृत्ति भारतीय साहित्य की चिरतन जनवादी परपरा का ही रूपातर है।

एक जमाना था कि भारतवर्ष के राजदरबारो मे कवि और शायर अपनी कविताएँ राजाओं के अभिनन्दन के लिए अर्पित करते थे और राज समादर प्राप्त करते थे। आज के कवि अपनी कृतियाँ देश की कोटि-कोटि जनता के

प्रति अर्पित करते हैं और जनता का यह कर्तव्य हो जाता है कि सरस्वती के इन वरद पुत्रों का वह हृदय से अभिनन्दन करे क्योंकि इन के स्वरों में हमारे नए देश की उमगों की वाणी है।

समारोह के अवसर पर उर्दू कविता का पद्यानुवाद नहीं प्रस्तुत हुआ था. पाठकों की सुविधा के लिए अब गद्य में अनुवाद जोड़ दिया गया है। तमिल कविता के पद्यानुवाद का सुधारा हुआ रूप प्रस्तुत है।

हमारे देश की संस्कृति एक है

डाक्टर केसकर का स्वागत-भाषण

बड़े हर्ष का विषय है कि आल इण्डिया रेडियो दूसरी बार सर्वभाषा सम्मेलन अखिल भारतीय रूप मे आपके सामने प्रस्तुत कर रहा है। पहली बार, पिछले साल, यह कल्पना हमने मूर्तस्वरूप मे लाने की कोशिश की कि गणतत्र दिवस के अवसर पर भारतवर्ष की सब भाषाओ के कवियो को एक मञ्च पर लाकर, एक प्लेटफार्म पर खड़ा कर, हमारे देश की संस्कृति एक है और एक दूसरे से मिली हुई है, यह दिखलाने की कोशिश करे। तो साहित्य का जो यह समन्वय है, कविता का जो यह अखिल भारतीय समन्वय है, उसे प्रत्यक्ष रूप मे सामने रखने की कोशिश की। उसको अपूर्व सफलता मिली, और उससे प्रोत्साहित होकर, इस साल हम इसको और संगठित तौर पर श्रोताओ के सामने उपस्थित कर रहे हैं।

पारसाल हमारे प्रधान मत्री जवाहरलाल जी ने इसका उद्घाटन किया और इस सम्बन्ध मे अपनी दिलचस्पी जाहिर की। मुझे बहुत खुशी है कि इस साल हमारे उप-राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन् उद्घाटन के लिए यहाँ आज हमारे सामने उपस्थित हैं। उनका साहित्य-प्रेम, उनकी विद्वत्ता सर्व-परिचित है और उसके बारे मे मैं कुछ कहना नहीं चाहता। मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि आज के समारोह का वह उद्घाटन करें।

सभी महान कविता की कोर में प्रकाश है

उपराष्ट्रपति श्री सर्वपल्लि राधाकृष्णन् का उद्‌घाटन-भाषण

मुझे प्रसन्नता है कि मैं यहाँ इस कविसभा का उद्घाटन करने के लिए आया हूँ। हमारा गणतन्त्र-दिवस एक सास्कृतिक महोत्सव का रूप भी धारण करता जा रहा है और आज यहाँ हमारे सम्मुख देश की विभिन्न भाषाओं के प्रतिनिधि कवि विद्यमान हैं, जो अपने काव्य-पाठ द्वारा हमे एक दूसरे को समझने में सहायता प्रदान करेंगे और इस प्रकार देश के सास्कृतिक संघटन में अपना योगदान देंगे।

सभी महान कविता की कोर में प्रकाश है। तथ्यो की नीरस गणना या अनुभव के वर्णन मात्र से कोई भी काव्य सचमुच महान नहीं हो सकता। कवि को अपने अनुभव में गहरे पैठना होगा, उसके महत्व को समझना होगा। व्यक्ति पर जो घटित होता है उसके द्वारा नहीं, बल्कि उसके प्रति वह जो कुछ करता है उसके द्वारा वह सच्चा कवि बनता है।

कवि किसी भी विषय पर महान काव्य की रचना कर सकता है। हमारे पूर्वजो ने कहा है कि यह ससार तिक्त भी है और मधुर भी—

क्वचिद्वीणावाद्य क्वचिदपि च हाहेति रुदितम्
क्वचिन्नारी रम्या क्वचिदपि जरा जर्जरवपुः
क्वचिद्विद्वद्‌गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहो
न जाने ससारः किममृतमयः किं विषमयः

इस ससार में एक ओर वीणा-वादन है तो दूसरी ओर हाहाकार और रुदन है, एक ओर सुन्दरी नारियाँ हैं तो दूसरी ओर जरा-जर्जर प्राणी है, एक ओर विद्वज्जन की गोष्ठियाँ हैं तो दूसरी ओर बेसुध मद्यप है, इसके मधुर और तिक्त दोनो पक्ष है, कवि इनमें से किसी को लेकर ऐसे रूप मे ढाल सकता है कि वह हमारे मर्म को छू सके।

काव्य का उद्देश्य सूचना मात्र देना नहीं है। उसे जीवन की किरणें विकीर्ण करनी चाहिए। यह तभी हो सकता है जब कवि अपने काम को हल्के ढग से न ले, उसका निरीक्षण बहिरग तक सीमित न हो और उसका विश्लेषण मात्र बौद्धिक न हो बल्कि वह अपने विषय के अतरतम में प्रवेश कर सके। विचारों की पवित्रता, मानस की शुद्धता और अनुभूति की गहनता महान काव्य के लिए आवश्यक हैं। आदेशों द्वारा ये गुण उत्पन्न नहीं किए जा सकते। व्यक्ति को स्वय ही प्रेरणा का अनुभव हो, यह आवश्यक है। तभी हमें महान काव्य की उपलब्धि हो सकती है। और मैं आशा करता हूँ कि आज जो लोग काव्य-रचना कर रहे हैं, वे अपने कार्य के गौरव को तथा जिस आदर्श के प्रति उन्होंने अपने को अर्पित किया है उसकी पवित्रता को पहचानेंगे।

आज जो कविताएँ हमारे सम्मुख पढी जाएँगी उन्हें सुनने में मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

☆

कृत

संगम-वर्णन

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलै-
मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपकजाना-
मिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥५४॥

क्वचित् खगाना प्रियमानसाना
कादम्बससर्गवतीव पक्ति ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा
भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥५५॥

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभि-
श्छायाविलीनै शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा
रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभ प्रदेशा ॥५६॥

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव
भस्मागरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गगा
भिन्नप्रवाहा यमुनातरगै. ॥५७॥

[कालिदास : रघुवंश, सर्ग १३

पूर्वाभास

· १ :

गोरी गंगा सग साँवली यमुना के।
दो रगो की तरल तरगें
दो छोरों से उठती, बढती मिल जाती हैं।
ऐसा दिखता .
वर्षों की बिछडी दो बहनें
श्याम गौर
सवली कपूरी, क्वांरी कुहरी,
क्वार दुपहरी और झांवरी साँझ सावनी
श्याम गौर बाँहें उछाल कर,
गले गले मिल,
लिपट रही हों।
सिमट रही हों आपस की गोदों में।
उन्मन मन, बेसुध विभोर तन
खोती जाती हों अपना अस्तित्व पुरातन।
भेद मिटाती जाती हों काले गोरे रगों का।
दुई दुरा कर,
जोड-जोड उज्ज्वल श्यामल लहरों को
निर्मल एक अगाध इकाई सी हों बनती जाती।

२

गोरी गगा काली कालिन्दी का संगम।
पर समरस होने के पहले
दोनों लहरें रूप रग रस धार
सिरजतीं कितने दृश्य सुहाने।
कहीं दीखता झलमल झलमल
आबदार मोती का ऐसा हार
कि जिसमें चमचम नीलम के टुकडे हों गए पिरोए।
और कहीं
कुछ उजले औ' कुछ नीले फूल कमल के
गूंथ गूंथ जा रही बनाई हो जैसे वरमाला।

कहीं······सांवले उजले हंसों की दुहरी सी पांत
उड़ चली हो ज्यों फड़का पंख।
कहीं पर.. उजले चंदन से चोती धरती पर जैसे...
फूल. पत्तियो की नक्काशी की जाती हो श्याम अगर से।
और कहीं पर...
किसी झाड के झुरमुट से छन कर आती.
दूधिया चांदनी पर पडती हो
परछाईं ज्यों तने डाल टहनी फुनगी की।
और कहीं पर
धुनी रुई के फाहों जैसे हल्के फुल्के,
शरद बिरद से उजले उजले
बादल दल के बीच बीच से
झांक रहा ज्यों नील गगन हो।
और वहाँ क्या छटा मनोरम।
जैसे भस्म रमाए शिव का
स्फटिक रजत हिम-सा उज्ज्वल तन
जिसमें काले काले विषधर
सोह रहे हों बन आभूषण!
मोह रहे हों रज-रज को ज्यों
एक तत्व बन कर सत् औ' तम।

रूपान्तरकार:
श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

जन्म, सन् १६१६, मैगरा, बिहार। रचनाएँ: काकली (संस्कृत में)। प्रसिद्ध कवि और आलोचक। संस्कृत में आप 'ललित-ललाम' नाम से लिखते हैं। मुजफ्फरपुर के रामदयाल सिंह कालिज में प्राध्यापक।

कवि
श्री अंबिकागिरि राय चौधुरी

रूपांतरकार
श्री भवानीप्रसाद मिश्र

लोकप्रिय राष्ट्रीय कवि। रचनाएँ वीणा, तुमि, सांग्स ऑफ दी सेल, (कविता-संग्रह)। असम साहित्य सभा के संस्थापक और असम जातीय महासभा के मुख्य मन्त्री। सम्पादक, डेका असम। गुआहाटी (असम)।

एये मोर मनोरम असमी असम

पूत भारतर चिर उन्नत गौरव मुकुटर
जेउती, चराइ रूप गरिमारे दीप्तिमान उज्ज्वल,
रस रंगियाल सपोत पुरीर कहिनुर जलमल
गाओ शुना गीत चिर सेउजीया मनोरम असमर ।

यत नितौ पुवाते पाटकाये दिये उषार दुवार खुलि,
शारी पाति थका पर्वत चूडा चिकमिक उठे ज्वलि,
अरुण कोवरे थुपि थुपि दिये सोणर चपा कलि
प्रवेश पथर अरिहणा सेया भारत सोमालो बुलि

यत लास्य अधीरा निजरार सुरे श्यामली मुखर करे,
थमकि थमकि मधु लय लासे भैयामर फाले लरे,
पर्वत मैयाम एकाकार करि माधुरी मुक्त सोते,
महामिलनर गाइ प्रीति गीति सार्दार सावति धरे
सुदूर विचारी वय मुकुलित उद्दाम खरतरे
असीम अपार निखिलर हिया सामरार उलाहते ।

यत आकाशर मेघे निमिषे निमिषे सलाय अयुत र
शिपीनी हातेरे टुकि टुकि आनि प्रकृति आत्महारा–
बूटा तुलि तुलि ऋतुवे ऋतुवे बोलाय मेखेला खन
रमक जमक पखिला–फुलर रूपेरे उपाछि परा ।

यत ग्रीष्मर रदे डेवा-पौरा दुख वारिपात जाय उटि,
वाणर प्रकोप महा पथारत साल्वा पलस परि
आहिनत हाहे मलयात नाचे जीयाइ थकार गीति
पुहर कुवॅलि विपादर दिन भोगालीत जाय उरि ।
ओरेओ वछर एइदरे यत जीवन पूजार आरति,
सेयोँइ असम मोर मनोरम भारत मातार किरीति ।

असम मेरा देश, मेरा प्राण

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

पुण्य भारत के समुन्नत भाल का टीका,
रूप है प्रत्येक जिसके सामने फीका,
दीप्ति-उज्ज्वल स्वर्ण नगरी का प्रभामय पुंज,
झलमलाते रंग-रस-आनन्द सुख का कुंज,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो उसका गान।

जहाँ पटकुइ नित्य द्वारे उषा के खोले,
जहाँ पर्वत श्रेणियों पर सूर्य रँग घोले,
अरुण चंपा की कली पर स्वर्ण बिखराता,
कर चुकाये बिना भारत का, नहीं आता,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

जहाँ लास्य अधीर निर्झर स्वरों की धारा,
कर रही है गुंजरित आकाश-पथ सारा,
जहाँ रुकते ही नहीं बढ़ते हुये सोते,
जहाँ एकाकार पर्वत-वन-भुवन होते,

असम मेरा देश, मेरा प्राण
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

जहाँ सरिता, प्रीत के गाते हुये सौ गीत,
सिंधु से अभिसार की साधे हुए है रीत,
जहाँ स्नेहिल लहर छूती है अखिल के छोर,
जहाँ आशा से भरे हैं पल, प्रहर, निशि-भोर,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

जहाँ बादल दल बदलते हैं हजारों रंग,
प्रकृति परिवर्तित जहाँ पर मौसमों के संग,
जहाँ सपनों की सरलता से सुमन खिलते,
तितलियों के वर्ण सुमनों से जहाँ मिलते,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

जहाँ वर्षा ग्रीष्म को धोकर बहा देती,
जहाँ धरती धान से नज़रें नहा देती,
जहाँ फसलें, शरद्-नभ-भर गीत गाती हैं,
जीस्त की घड़ियाँ मरण पर जीत जाती है,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

श्री भवानी प्रसाद मिश्र

जन्म, सन् १९१४, नरसिंहपुर (मध्य प्रदेश)। नई हिंदी कविता के प्रमुख कवि। प्रकाशित कविता-सग्रह: गीत फरोश। आकाशवाणी के बम्बई-केन्द्र से सम्बद्ध।

कवि
श्री सच्चिदानंद राउतराय

रूपांतरकार :
श्री उदयशंकर भट्ट

प्रमुख कवि। रचनाएँ : पाण्डुलिपि, तथा पल्लिश्री। आजकल, केशवराम काटन मिल्स, कलकत्ता में प्रमुख अधिकारी। ४२, गार्डेन रीच रोड, कलकत्ता।

दिगंत

[१९५० जानुआरी ता० २६ रे लेखक सामान्य पीडित थिबा अवस्थारे लिखित]

डाक्टर ! मुक्ति दिअ। बाहारे जिबाकु दिअ
छविश सकाले,
मोर एइ रुग्ण देह, क्लान्त मन, असुस्थ ककाले
टाणि टाणि अजस्र कौतुके

जनतार जुलुसरे, रास्तार चउके
सामिल हेवाकु चाहे ।
छुटि फुटपाथे
आजि तुग सकालर भडा नेइ हाते
बुलिवाकु दउडि, भीषण
इच्छा हुए। इच्छा हुए रोग पुरातन
फिंगि देइ दूरे
नूतन, सबुजु साप फिंगि तार जीर्ण खोलपारे
सवुज दुधरे धुआ चक् चक् तरवाल देहे
खेलिबुले जिमिति से खोला जमि, प्रान्तरे, आलुए,
सेइपरि इच्छा मोर जीवनर नूआ विद्युतरे
चमकि, झलसि उठि जनतार आकाशर नीले
जलिवाकु क्षण पाइँ, तापरे मु चित्रपतगम
परि बा हावारे उडि ढिला करि देह भारक्रम
उजिजान्ति भासि भासि आकाशर नैलिरे पहँरि
बड इच्छा, एका, एका सगे केही न थान्ता प्रहरी ।
विछणारे शोइ शोइ मन हुए गगार इंजिसि
परि मु सफेत् जले झाम्प मारि जाआन्ति कि मिशि
तीर्यक डेणारे चिरि पातालार अतल पाहाच
प्रवालर गृहे नाचि नेलि नाली हररगी माछ
सागरे, आसन्ति फेरि, ढेउ भागि पाणिर सिडिरे
मोर एइ रोगशय्या रूपे रसे भरि क्षणकरे ।
एसिआर एक प्रान्तुं अन्य प्रान्ते जागे जे जीवन
(एइ नूतन आशर मानचित्र, एइ जे उत्तरण)
मैसुर चदनवनु कां मरर् तुपार अरण्य
सिन्धुर निर्जन मरुचारी केउ त्रस्त काराभ्यान
दृष्टिरे नवीन एक दिगन्तर जागे जे सधान
पामिरर् मालभूइ, मालयर रवर जगले
चीनीर हलदी खेते असरन्ति आशार फसले

नूतन दृष्टिर जेउ इन्द्रधनु सप्तरंगे खेले
तारइ आश्चर्य विभा आजि मोर रोगशय्या घेरि
एसिआर चारिदिगु झरिपडे, दिग्वलय चिरि ।
(फालगुनर बतासरे झुरु झुरु फुलगंध परि ।)
धविश सकाल आसे । स्पर्श तार गंधमृग मने
नूतन सुरभि आणे, काहिं एक रोगीर शयने ।
निभिजाए मरीचिका, मरुभूर मारीच सभ्यता,
पखीर जाहाज जाए । आकाशरे (भेला भेला) चढेइक छता ।
मरुजात्री काराभ्यान दृष्टिपथे नूतन दिगन्त ।
उषार चेहेरा आजि एक नूतन पथर चित्रपट ।

दिगन्त

मुक्ति दो डाक्टर, मुक्ति की अनुमति दो
जनवरी छब्बीस के सुप्रभात काल में
मेरा यह रुग्ण तन, मेरा यह रुग्ण मन, अस्वस्थ कंकाल में—
दौडता है अवश
जनता के जुलूस में आकर्षक कौतुकवश,
रास्तों के चौक में
मिलना चाहता हूँ मैं ।
छूट, फुटपाथ पर—
गौरव प्रभात में—
झंडा ले हाथ में—
इच्छा है यह प्रबल
खूब दौडूँ थल थल,
पर निबल रोग से मैं गया हूँ गल ।

फेंक दूं या दूर करूँ—
नूतन हरित साँप फेंकता ज्यों केंचुल को,
तथा दुग्धस्नात सो चमचमाता शुभ्र तन
केलि करता है ज्यों,
मैं भी क्या इसी प्रकार—
खुल कर खेलूं इस खुले मैदान,
धरती आकाश में, विद्युत विलास में।

कामना है यह मेरी,
जीवन की नवीन सौदामिनी में—
चमकूं, झुलस जाऊँ जनता के नील व्योम में क्षण भर,
क्षण भर,
आहुति शलभ सम—
ढील दूं मैं तन क्रम,
वायु में उडूं चरम,
नील व्योम मे विरम,
गहरी यह इच्छा है कोई न हो प्रहरी।
पड़े पडे विस्तर पर—उठती है उमग यह—
गंगा के तरंगमय निरभ्र शुभ्र जल में
डूब जाऊँ
विहगो के डैने चीर अतल तल सोपानो से
नाच कर पाताल के प्रवाल लाल घर में
नीली लाल हर रगी मछली की उमग सम
और फिर लौट आऊँ पानी के सोपान से
यह मेरी रोग शैया क्षण के लिए भी होती
रूप भरी रसराशि
एशिया के देश देश जागे जीवन अनत
यही है नवीन मानचित्र अभिलाषा का।
मैसूर के मनोनीत चदन के अरण्यों से
काश्मीर के वरेण्य हिमहास मानो, वन
सिन्ध के निर्जन मरुचारी त्रस्त कारवाँ
इनकी भी दृष्टि में हैं जागते दिगन्त प्राण
पामीर की समभूमि,
मलाया के रवड जंगल में

चीन के हरे हरे खेतो के मगल में
आशा की फसलें नये इन्द्रधनुषी रगों सी
वृष्टि की तरगो में खेलती है नये खेल
दूसरी आश्चर्य विभा आज मेरी शैया घेर
झरती है चारों ओर
एशिया के कोरो से।
दिग्वलय चीर कर, फाल्गुनी वात आया
लहराता पुष्प गध मृदुल मृदु अमद
छब्बीस का प्रभात लाया
स्पर्श गन्ध मृग मन में जिसका अमद मृदु
नूतन सुरभिवध। मुझ रोगी के शयन मे।
बीती है मरीचिका—
औ मरुभरी मारीची सभ्यता भी।
विहगों के पोत ओत-प्रोत आकाश में
छाते से छा गए नूतन आकाश में
मरुस्थल कारवाँ नूतन दिगन्त से
दीखती हे मूर्ति उस उषा की ज्योतिर्मय
नवीनतम पथ से आज वन चित्रपट।

श्री उदयशकर भट्ट

जन्म, सन् १८६८, इटावा (उत्तर प्रदेश) मे। कवि, नाटककार और उपन्यासकार। प्रमुख रच नाएँ राका, विसर्जन, मानसी, युगदीप, अमृत और विप (कविता-सग्रह)। आकाशवाणी के जयपुर-केन्द्र से सम्बद्ध।

कवि :
श्री जिगर मुरादाबादी

रूपांतरकार :
श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव

जन्म, सन् १८९० । प्रमुख गजलगो शायर । रचनाएँ : दागे-जिगर, शोलये-तूर, आदि । निवास : गोंडा (उत्तर प्रदेश) ।

साक़ी से खिताब

कहाँ से बढ के पहुँचे हैं कहाँ तक इल्मोफन साकी
मगर आसूदा इंसाँ का न तन साकी न मन साकी
सलामत तू तेरा मैखाना तेरी अंजुमन साकी
मुझे करनी है अब कुछ खिदमते दारो रसन साकी

रगोपै मे कभी सहबा ही सहबा रक्स करती थी
मगर अब जिंदगी ही जिंदगी है मौजज़न साकी
कभी मै भी था शाहिद दर बगल तौबा शिकन मैकश
मगर होना है अब खजर बकफ सागर शिकन साकी
न ला वसवास दिल में जो है तेरे देखने वाले
सरे मकतल भी देखेंगे चमन अन्दर चमन साकी
जो दुशमन के लिए भी सर से अपने खेल जाते है
दिले खूबाँ मे चुभता है उन्ही का बाँकपन साकी
तेरे जोशे रफाकत का तकाज़ा कुछ भी हो लेकिन
तुझे लाज़िम नही है तर्के मनसब दफ्अतन साकी
अभी नाकिस है मैआरे जनूनो नज्मे मयखाना
अभी नामोतबर है तेरे मस्तो का चलन साकी
वही इसाँ जिसे सरताजे मखलूकात होना था
वही खुद सी रहा है अपनी अज़मत का कफन साकी
लिबासे हुरियत के उड रहे है हर तरफ पुर्जे
बिसाते आदमीयत है शिकन अन्दर शिकन साकी
कही मुलहिद न बन जाएँ मेरे अफकारे सजीदा
कही मुर्तद न हो जाए मेरा ज़ौके सुखन साकी
कही खुद हुस्न रह जाए न कौमी मिल्कियत बनकर
कही खुद इश्क हो जाए न महदूदे वतन साकी
कहाँ मै रिंदे सर्गश्ता कहाँ यह दावए तमकी
समझ ले इस को मेरा एक अन्दाजे सुखन साकी
अजव क्या है यह वहकी बहकी बातें रग ले आएँ
वहुत वाहोश रहता है मेरा दीवानापन साकी
नमूदे सुब्हे काज़िव ही दलीले सुब्हे सादिक है
उफक से ज़िदगी की देख वह फूटी किरन साकी
वेदह जामे मये वाकी के दर जन्नत न ख्वाही याफ्त
सवादे साहिले गगा ओ गुलगश्ते चमन साकी ।

साक़ी के प्रति

[प्रस्तुत गज़ल में कवि ने साकी के प्रतीक को बहुत बड़ा अर्थ-गौरव प्रदान किया है। साधारणतः साकी का तात्पर्य मधुबाला से होता है, परन्तु यहाँ कवि ने सृष्टि के परम नियता की ओर सकेत किया है क्योंकि वही संसार और जीवन को मानव के लिए सुलभ करता है]

कवि कहता है कि आज ज्ञान और कलाओ की इतनी उन्नति हो गई है, परन्तु मानव का तन-मन कुछ भी संतुष्ट नहीं है।

हे साक़ी! तुझे तेरी मधुशाला और मद्यपो की गोष्ठी मुबारक हो; मुझे तो अब कुछ ऐसे काम करने हैं जिनके कारण मुझे सूली पर भी चढना पड सकता है।

मेरी नसो और रगो में कभी शराब ही शराब दौडा करती थी, परन्तु अब वहाँ जीवन ही जीवन तरगित हो रहा है।

कभी मैं भी माशूक़ को बग़ल में लेकर घूमता था, प्रतिज्ञाओ को तोडता रहता था, घोर मद्यप था, परन्तु अब मुझे हाथ में तलवार लेनी है और प्यालों को तोडने वाला बनना है।

तू सदेह मत कर; जो दृष्टि संपन्न हैं वे वधशाला में भी उपवनो का दर्शन कर लेंगे।

जो शत्रु के भले के लिए भी अपनी जान पर खेल जाते हैं, वे ही प्रेमिकाओं के हृदय का सम्मान भी प्राप्त कर सकते हैं।

मैत्री संबधो के उल्लास की चाहे तुझसे कुछ भी माँग हो, तेरे लिए यह कदापि उचित नहीं है तू यकायक अपने कर्तव्य से विमुख हो जाए।

अभी तेरी मधुशाला में पीने वालो की लगन त्रुटिपूर्ण है और मधुशाला का ढग भी ठीक नहीं है और जो पिए हुए हैं उनका आचरण भी अविश्वसनीय है।

जिसे सारी सृष्टि का अवतंस होना था, वही मानव आज स्वयं अपनी मृत्यु की तैयारी कर रहा है।

स्वातन्त्र्य-भावना छिन्न-भिन्न हो गई है और मानवता की चादर पर बेतरह सलवटें पड़ गई हैं।

(ऐसे में) कहीं मेरी गंभीर कल्पनाएँ नास्तिकतापूर्ण न हो जाएँ और मेरी वाणी में अविश्वास न आ जाए (इसका मुझे डर है)।

श्रौर कहीं ऐसा न हो जाए कि सौंदर्य केवल किसी राष्ट्र की सपत्ति बन जाए श्रौर प्रेम किसी देश विशेष तक ही सीमित रह जाए ।

कहाँ मैं श्रहकारी मद्यप श्रौर कहाँ ये इतनी महान प्रतिज्ञाएँ (श्रर्थात मेरे मुख से ये बातें विचित्र सी लगती हैं) परन्तु, तू इसे मेरे कथन का एक ढग समझ।

कोई श्राश्चर्य नहीं कि मेरी ये बहकी बहकी बातें भी प्रभावशाली सिद्ध हो जाएँ क्योंकि मेरा मतवालापन भी बहुत चैतन्यपूर्ण होता है ।

पौ फटने के पूर्व के प्रभात का प्रकट होना स्वय ही पौ फटने के बाद वाले उज्ज्वल प्रभात के श्रागमन का प्रमाण है, वह देख क्षितिज से जीवन की किरण फूट रही है ।

ऐ साक़ी, जितनी शराब बाकी है वह सब मेरे प्याले में ढाल दे क्योंकि गगा का किनारा श्रौर हरे भरे उपवन की चहल पहल का यह वातावरण मुझे स्वर्ग में भी नहीं मिल सकेगा ।

कवि :
श्री विनायक कृष्ण गोकक

रूपान्तरकार :
श्री नरेन्द्र शर्मा

जन्म, सन् १९०९। प्रमुख कवि। रचनाएँ : पयन, समुद्र-गीतगलु, युगान्तर, बाल देगुलडल्ली (कविता-संग्रह)। कर्नाटक कालिज धारवाड के प्रिंसिपल।

ध्रुवड सीमे

१

ओर्व वेगदिखने तानु सुत्तिदसू
ओर्व तगदिरनेडे कणनेत्ति दरू
वाह्निहलू कोटि चद्रर कनसुकडु
लई भूदेवी
वेठेविहडू कोटिसूर्यर ननसमुडु
आ महानुभावी।

२

कोटि सूर्यर ननसमुड्डु तालेदरु
अनाद्यन्तर रवियोर्वने
अवला सहस्रदल शिरकमल प्राणसखनु
कोटिचद्रर कनसुकड्डु वालिदरू
आगु भोगिरद सोमेन्दु ताने
अवल हृत्पद्मदासनके सम्मुखनु ।

३

ओ ! अनेकानेक नान्यगठीगा सार्व
भौमिक मैवदतच्योत्ति सिद्धियकिर्व
कम्मटवु नम्मेदेश ।
तिलियुत सहोदयरियारिगे तिलिसि विख्याते
याणि मर्यतव्य दिव्यगोलिसलु जगन्नाते
भारतिगे इच्चिलादेश ।

४

निलद कनसुगकेल्ल नूरुकोटि
ओन्दोन्दु कनसिगोन्दोन्द्र धाटि
कनिसिल्ल ध्रुवदसीमेयनोन्दे सेरुवन्ते
नेलामुगिलुग बेरेसि ज्ञोपानुवेरुवन्ते
इन्द्रकले मत्रविद्ययस्नोन्द करुणिसिहलु
नेलदाई, भारतिगे उदयवन्नरु णिसहलु ॥

५

अल्लवलिदान ओ । आत्मप्रदान
आफलोन्मुखर्तोगिह दिव्ययान
येकु ! अर्घ्यवनेत्तु ! सूर्याभिमुखियु ।
वालु नीनागुत्त नित्यमुखीयु ।
तोसिरलु रविमुकुटवन्नु ऋतप्रज्ञे,
पौर्णिमेये नीगेथव साहसदा ममज्ञे ।

निन्नत्ररपिसु, अर्पणठे निन्नमालके
निनगाग कौनिलि विद्वगलकाणके ।
अल्ल वलिदान, ओ ! आत्मप्रदान
आ फलोन्मुखतेगिह् दिव्ययान ।

सत्य-सीमा

एक मात्र रवि की परिक्रमा करती घरती वारम्बार,
एक मात्र शशि को ही घरती दृग भर भर कर रही निहार ।
पर अनेक शशि स्वप्न-दीप बन पलकों में पलते रहते,
घरती माता के अतर में कोटिसूर्यप्रभ ज्योतिर्धार ।

कोटि सूर्य के सत्य तेज पर पलती रही सदा घरती,
आदि-अत से परे एक रवि को आत्मस्थ घरा करती,
वही एक दिनमणि चूड़ामणि सहस्रार पर शोभित है,
उस आद्यंतविहीन सूर्य की प्रभा तिमिर-माया हरती ।

यद्यपि कोटि चद्र पृथ्वी का स्वप्न–निवेश सजाते हैं,
पृथ्वी के स्वप्निल पलको में सोमकलश छलकाते हैं,
पर घरती के कुमुदहृदय पर एक मात्र शशि की शोभा
उदय-अस्त से परे, न जिसको कृष्णपक्ष ढँक पाते हैं ।

भारत की यह भूमि विशाला टकनशाला अकलुष की,
सार्वभौम सर्वस्य, छाप हर मुद्रा पर लगती उसकी,
भिन्न अनेकानेक रूप हैं, जिन पर एक अभिन्न प्रभाव
भारत भू को सहज प्राप्त है दिव्य कला यह अपुरुष की ।

धरती के सपने अनगिनती, हर सपने का अपना रूप,
भारत माँ रच रही निरंतर दिव्य स्वर्ग सोपान अनूप।
विश्वजननि द्वारा दीक्षित है भारतभूमि दिव्यकर्मा,
स्वप्न सत्य का शिखर छू रहे, उतरी नई भोर की धूप।

बलि की भूखी नहीं सफलता, आत्मसमर्पण ही साधन,
उठो, अर्घ्य दो सूर्योन्मुख हो, जीवन सफल, सुफल लोचन।
सत्यकेतु चैतन्य सूर्य का मुकुट तुम्हें पहनाएगा,
साहस से भर देगा मानस मनसोजात अमृतवाहन।

बलि की भूखी नहीं साधना, केवल आत्मसमर्पण, दान,
पूर्ण समर्पण से त्रिलोक हो जाएँ हस्तामलक समान।
नहीं, नहीं, बलिदान नहीं, सम्पूर्ण समर्पण आवश्यक,
दिव्य यान की दिव्य दिशा में, साधक, करो दिव्य अभियान।

श्री नरेन्द्र शर्मा

जन्म, सन् १९१३, जहाँगीराबाद (बुलन्दशहर)। प्रमुख कवि, कहानीकार और विचारक। रचनाएँ शूल-फूल, कर्ण-फूल, प्रवासी के गीत, प्रभात फेरी कामिनी, पलाशवन, हंसमाला, अग्निशस्य तथा रक्त-चन्दन आदि कविता-संग्रह। आकाशवाणी के बम्बई-केन्द्र से सम्बद्ध।

कवि :
श्री दीनानाथ कौल 'नादिम'

रूपांतरकार :
डा० हरिवंशराय बच्चन

जन्म, १९१६। जन्मस्थान, श्रीनगर। नई कश्मीरी कविता के प्रवर्तक कवि। मुक्तकों, गीतों, सॉनेटों, गीत-रूपकों के रचयिता। संपादक, कोङ्पोश। कश्मीर कल्चरल कान्फ्रेंस के संस्थापक-सदस्य।

सोन वतन

सोन वतन पोश ह्यू
ताव होत यावुन बहारुक, शालमारुक गोश ह्यू
नवि पोशाकुक वोश ह्यू
सोन वतन लोल सीरन हुद शिहुल सरपोश ह्यू
याद प्योमुत ओश ह्यू

असि वतन गुलज़ार ह्य॒
ज़न बुथिस गिद-गिंद छु खोतमुत लालनइ वोज़जार ह्य॒
असबुनुइ लोकचार ह्य॒
न्यद्रि वुथमुत शार ह्य॒
म्योन वतन नवजवानी हुद वुशुन खुमार ह्य॒
वाल पानुक यार ह्य॒

असि वतन अछ्गाश ह्य॒
कोरि मालिस दजि गडिथ ज़न पास सोनचइ चाश ह्य॒
दोघ च्यवन प्रागाश ह्य॒
यावनच गिंदबाश ह्य॒
गाम मुज़र्यन जन मगिथ ओनमुत छु जिग्रुक काश ह्य॒
पूर गछवन्य आश ह्य॒

असि वतन रूत गाम ह्य॒
थल रूविथ जन बोनि शिहलिस ग्रीस्तिस आराम ह्य॒
डल दहिस प्यठ शाम ह्य॒
आदनुक बादाम ह्य॒
वैलि ह्यथ ज़न गाम प्यठ यचकॉल्य वोथमुत माम ह्य॒
माजि हुद मोम दाम ह्य॒

असि वतन जामवार ह्य॒
ओग्जि पुजनिथ सचनि तल्य कोड टोपगर्यव गुलजार ह्य॒
रीशमुक शेहजार ह्य॒
तोस अजिलदार ह्य॒
डून हचि प्यठ तोर्क छॉन्य खोनमुत छु जन लोकचार ह्य॒
आसनुक अम्मार ह्य॒

अस् छि अमिक रॉछदर
अस् जमिक ठूछक लदाखक व्यथि छि कॉशिर रूत गवर
अस् छि वतनक रॉछदर
सान्य हिम्मन अय सिपर

कस छु जूरथ जिंदगी सूत्य मेनि तुयि कुस अनि जिगर
अस् छि वतनुक रॉछदर

ललव्यदि हुज़ आवाज ह्यथ
हव्व खोतन्य ललवमुत युस लालि अन्दर सुइ साज ह्यथ
जिंदगी हुद राज ह्यथ
अस् छि अज नोव साज ह्यथ
सोन्त वावुक बोलवुन मयखोश मुदुर अदाज ह्यथ
अस् छि अज़ नुव साज ह्यथ

असि छे अज रुच त्राय सूत्य
असि करोरन पनन्यनुइ हुज मीठ मोहबत माय सूत्य
व्यथ छे अज गगाय सूत्य
पोज छू सानी राय सूत्य
प्यठ हिमालुक स्नेह बुरूत लव-होत गुहुल असि साय सूत्य
लोल सोद्रच ग्राय सूत्य ।

हमारा वतन

वतन हमारा एक विहँसता फूल है,
वह बहार है जिस पर जोबन आ गया,
शालिमार है जो फूलो से छा गया,
खुशी, कि जो देता तन को जामा नया,
वह कमलो से निकली नई सुगन्ध है,
उसके दिल में प्रेम कहानी बन्द है,
यौवन की वह पहली प्यारी भूल है।
वतन हमारा एक विहँसता फूल है।

वतन हमारा महकदार गुलजार है,
खिलते फूलों के गालों सा लाल है,
बचपन की मुसकानों सा खुशहाल है,
अभी अभी जो फूट पड़ा वह गीत है,
नव जवान के पागल मन की प्रीत है,

वतन हमारा बालपने का यार है।
वतन हमारा महकदार गुलजार है।

वतन हमारा है आँखों की रोशनी,
वर खोजी बाबुल का सोने का डला,
ऊषा की नव ज्योति कि यौवन की कला,
गोद लिया बध्या का बेटा लाडला,

वह आशा जो पूरी होने को बनी।
वतन हमारा है आँखों की रोशनी।

वतन हमारा एक सुनहरा गाँव है,
थके मुसाफिर को चिनार की छाँव है,
डल के तट पर उतरी सुन्दर शाम है,
फला पेड पर वह पहला बादाम है,
फल मेवों की टोकरियाँ लाने वाले,
मामाजी के आने का पैगाम है,

माँ के आँचल में ममता का भाव है।
वतन हमारा एक सुनहरा गाँव है।

वतन हमारा जैसे जामावार है,
चतुर सुई से कढ़ी केसरी क्यारियाँ,
कोमल जैसे हों रेशम की सारियाँ,
तूश कि जिसपर लगी रुपहली धारियाँ,
खुदी लकडियों पर बचपन की मूरतें,
हुई न जिनके मन की, ऐसी सूरतें,

वतन हमारा इन सबका आकार है।
वतन हमारा जैसे जामावार है।

हम अपनी धरती के पहरेदार हैं,

जम्मू, पुंछ, लद्दाख और कश्मीर के,
हम जो कहलाते हैं बेटे वीर के,
ढाल हमारी हिम्मत, बल तलवार है,
नहीं कभी खम होती जिसकी धार है,
कहीं जिंदगी ने भी मानी हार है,
इसके मुंह लगना बिलकुल बेकार है,

हम सब लड़ने मरने को तैयार हैं।
हम अपनी धरती के पहरेदार हैं।

शब्द लल्ल के साथ हमारे आज हैं,

हब्बा खातूं की छाती की तान भी,
जीवन का जो भेद बताए, ज्ञान भी,
नए हमारे कंठस्थल में राग हैं,
नई बहारों से लहराते बाग हैं,

हाथ हमारे आज नए ही साज हैं।
शब्द लल्ल के साथ हमारे आज हैं।

एक नया आदर्श हमारे पास है,

हमने भारत भर का पाया प्यार है,
मिली वितस्ता से गंगा की धार है,
सत्य और संकल्प हमारा एक है,
हिमगिरि के घन तुहिन कणों की छांव में
आज हमारी मिट्टी का अभिषेक है।

आज प्रेम के सागर में उल्लास है।
एक नया आदर्श हमारे पास है।

कवि

श्री सुन्दरम्

रूपांतरकार :

श्री भगवतीचरण वर्मा

जन्म, सन् १६०८। पूरा नाम त्रिभुवनदास लुहार। प्रमुख कवि। रचनाएँ कोमा भगतनी कडवी वाणी, वसुधा तथा यात्रा, (कविता-सग्रह)। आजकल अरविन्द आश्रम पांडिचेरी मे रहते है।

घण उठाव !

घणुक घणुक भागवू घण उठाव मारा भुजा !
घणुक घणु तोड़वे, तु फटकार घा, ओ भुजा !

अनंत थर मानवी हृदय चित्तकारिये चड्या
जडत्व पण जीर्णनातू धड धड़ा वी दे घाव त्यां

धरा घणघणे भले, थरथरे दिशा, त्योभ भाँ
प्रकप प्रथराय छो, उरउरे उठे भीतिनो
भयानक उछाल छो, जगत जाव डूलि भले,
पछाड घण, ओ भुजा धमधमा व सृष्टी वधी !

अशे, युगयुगादिनापड़ परे, पडो जे चड्याँ,
लगाव, घण ! धा, भूटो तडतडाट पाताल सौ,
धरा उर दटाई मूर्छित प्रचड ज्वालावली
वहिर्गतवनी रहो, विलसि रौद्र फूत्कार थी ।

तोडी फोडी पुराणो ताबी ताबी तूटेलू,
टीपी टीपी वधू ते अवलनवल त्याँ आवी घाट एने,
झाँकी रहे था, भुजा हे, लई घण, जगने धा थकी घाट देने !

नाश और निर्माण

इस जग में ऐसा वहुत कि जो तोड़ा जाए
तू थाम हथौड़ा ऐ मेरी बलवती भुजा !

क्षत-विक्षत करने को है यह सब सड़ा गला
तू इसे ध्वस्त कर, ऐ मेरी वलवती भुजा !

इस मानव के उर के ऊपर
इसके कर्मो पर औ मन पर
हैं युगो युगो के जीर्ण जड़ो
के जमे हुए अनगिनती स्तर
उन सब पर हो आघात प्रबल नवजीवन का
अपना प्रहार कर, ऐ मेरी वलवती भुजा !

चाहे थर्राएँ दसों दिशा
या डगमग डोले धरा अचल
कम्पायमान-हो नभमडल
प्रत्येक हृदय में आन्दोलित
हो उठे दैत्य सा भीषणमय
हो जाय नष्ट ससार सकल
हिल जाय सृष्टि, ऐसा हो तेरा वार कड़ा
निष्क्रिय तू मत बन, ऐ मेरी बलवती भुजा !

यह त्रस्त और विक्षुब्ध जगत,
जम रहीं तहों पर तहें जहाँ,
युग युग के मलिन विकारों की,
वे एक बार हो जायें ध्वस्त,
वे अन्ध गर्त, पाताल सृष्टि
के टूट जायें भीषण रव बन .
औ व्यथित धरा के अन्तर की
मूर्छित सी शत शत ज्वालाएँ
शत शत लपटों में फूट पड़ें
कर उठें यहाँ ताडव-नर्तन
सज जायें प्रलय के साज गाज बन जायें आज
तेरी चोटें उन्मत्त, अरी बलवती भुजा !

तू तोड़ निरन्तर तोड़ अरे
जो कुछ भी यहाँ पुरातन है
तू उसे जला दे जो कि यहाँ
टूटा फूटा है, जर्जर है
पर करना है निर्माण नया
भरना है पावन प्राण नया
तेरा प्रहार दुनिया को दे आकार नया
तू थाम हथौड़ा, ऐ मेरी बलवती भुजा !

कवि :
योगी शुद्धानंद भारती

रूपान्तरकार :
श्री इलाचन्द्र जोशी

प्रमुख कवि, बहुभाषाविज्ञ और विचारक विद्वान। रचनाएँ : भारतशक्ति नामक बृहत्काव्य एवं अन्य लगभग सौ गद्य-ग्रंथ। निवास, पाँडिचेरी।

चिकनातम् जेहिन्त

चिकनात गर्जनै चेय्ते-जेजे
जेहिन्तेन्न वीररमुन् चेल्वोम्
चकनातपेरि कोट्टिये—हे हे
चत्तियच्चमरै वेल्लुवोम्- जेहिन्त जेहिन्त

कोडिकोडि वीरर नाडिते तर्मचक्र
क्कोडि परक्कुम् कोट्रनाडितें तेय्वम्
आडुकिन्र अगर नाडिते-अन्पुम्
अखिलुम् पाकुम् अमुत नाडिते-जेहिन्त
मुत्तिरैत्तु मुप्पुरम् कडल-वेट्रि
मुरचु कोट्टुम् अरचु नम्मते
चत्तमिट्टरुवि यालोलि—ओम् ओम्
चान्ति एन्नुम् कान्ति नाडिते-जेहिन्त

तेनुम् पालुम् तीकनिकलुम्-नालुम्
चेकित्तु क्कोट्टुम् चेल्व नाडिते
मानुम मयिलुम् कुयिलिनकलुम्-मातर
वडिवै वकण्डु मयकु नाडिते-जेहिन्त

कोल्लुकुडु कुलिर्न्तु पोकुमे-वेय्य
कोपप्पुयलु अमैतियाकुमे
कल्लिन् मनमुग करैन्तुरूकुगे एकल
कण्णन् पुत्तन् चोल्लुग् चोल्लिले जेहिन्त

तिडुतिडुक्कुम् अणुवेडिच्चमर-चेययुम्
तीयर इकु तीण्डलाकुमो ? अवर
नडुनडुकि प्पकैयोडुकवे-आत्म
ज्ञान चक्ति वेल्लम् पोकुमे-जेहिन्त

नेरुजीयिन् पच चीलमुम्-पूविल्
निकरिल्लान कान्तियुल्लमुम्-पुत्तर
कोरूकिन्र अप्ट चीलमुम्-कोण्डु
कुवलयत्तिल अमैति नाट्टुवोम्-जेहिन्त

पारतक्कुडियूरचिले इनि
प्पचमिल्लै ! पयमुम् इल्लैये
चूरियनै प्पुयलणैक्कुमो-वीर
चुतन्तरत्ते प्पकै केडुक्कुमो-जेहिन्त

नाट्टुयिर नमतु नल्लुयिर-ताय्
नाट्टुनन्मै नमतु नन्मैये
नाट्टुच्चेल्वम् वीट्टुच्चेल्वमे-इकु
नामिलातु यारूम् इल्लैये-जेहिन्त

वट्टनान्कुडै निकलिले इके
वडक्कु, तेर्क्कु, किलक्कु मेर्क्कुडन्
ओट्टुरवु कूडि वालुवोम्-एन्रूम्
ओन्रुलकु ओन्रुमान्तरे-जेहिन्त !

जय मातृ भूमि

जय जय जय मातृभूमि !
जय जय जय हिंद ।

सिंहनाद सदृश करें
वीर-गर्जना ।
शंख बजे मंगलमय
दुंदुभी-निनाद अभय
सत्य-युद्ध-धीर करें
विजय-साधना
सिंहनाद सदृश करें
वीर-गर्जना ।

कोटि-कोटि वीरव्रती
धर्म चक्र-ध्वजा धृती

कोडिकोडि वीरर नाडिते तर्मचक्र
क्कोडि परक्कुम् कोट्रनाडितं तेय्वम्
आडुकिन्र अगर नाडिते-अन्पुम्
अखिलुम् पाकुम् अमुत नाडिते-जेहिन्त

मुत्तिरैत्तु मुप्पुरम् कडल-वेट्रि
मुरचु कोट्टुम् अरचु नम्मते
चत्तमिट्टरुवि यालोलि–ओम् ओम्
चान्ति एन्नुम् कान्ति नाडिते-जेहिन्त

तेनुम् पालुम् तीकनिकलुम्-नालुम्
चेकित्तु क्कोट्टुम् चेल्व नाडिते
मानुम मयिलुम् कुयिलिनकलुम्-मातर
वडिवै वकण्डु मयकु नाडिते-जेहिन्त

कोल्लुकुडु कुलिन्र्तु पोकुमे-वेय्य
कोपप्पुयलु अमैतियाकुमे
कल्लिन् मनमुग करैन्तुरूकुगे एकल
कण्णन् पुत्तन् चोल्लुग् चोल्लिले जेहिन्त

तिडुतिडुक्कुम् अणुवेडिच्चमर-चेययुम्
तीयर इकु तीण्डलाकुमो ? अवर
नडुनडुकि प्पकैयोडुकवे-आतम
ज्ञान चक्ति वेल्लम् पोकुमे-जेहिन्त

नेरुजीयिन् पच चीलमुम्-पूविल्
निकरिल्लान कान्तियुल्लमुम्-पुत्तर
कोरूकिन्र अप्ट चीलमुम्-कोण्डु
कुवलयत्तिल अमैति नाट्टुवोम्-जेहिन्त

पारतक्कुडियूरचिले इनि
प्पचमिल्लै ! पयमुम् इल्लैये
चूरियनै प्पुयलणैक्कुमो-वीर
चुतन्तरत्ते प्पकै केडुक्कुमो-जेहिन्त

नाट्टुयिर नमतु नल्लुयिर-ताय्
नाट्टुनन्मै नमतु नन्मैये
नाट्टुच्चेल्वम् वीट्टुच्चेल्वमे-इकु
नामिलातु यारूम् इल्लैये-जेहिन्त

वट्टनान्कुडै निकलिले इके
वडक्कु, तेक्कुं, किलक्कु मेक्कुंडन्
ओट्टुरवु कूडि वालुवोम्-एन्रुम्
ओन्रुलकु ओन्रुमान्तरे-जेहिन्त !

जय मातृ भूमि

जय जय जय मातृभूमि !
जय जय जय हिंद ।

सिंहनाद सदृश करें
वीर-गर्जना ।
शंख वजे मंगलमय
दुंदुभी-निनाद अभय
सत्य-युद्ध-धीर करें
विजय-साधना
सिंहनाद सदृश करें
वीर-गर्जना ।

कोटि-कोटि वीरव्रती
धर्म चक्र-ध्वजा धृती

दिव्य-प्रेम-प्लावन में
हो रहे विभोर
याम याम पहर पहर
सिंधु उठे लहर लहर
हहर-हहर छहर-छहर
नाचे निशि भोर
अर्पण कर मुक्ताकण
करें अर्चना
सिंहनाद सदृश करें
वीर-गर्जना ।

गांधी की अमर भूमि
नदी वही चरण चूम
गाती नित झूम झूम
शांति ! ओम् शांति !
अमृत मधुर प्यार बहे
फल-रस की धार बहे
पिक मयूर मृग विमुग्ध
देख अमल कांति
कृष्ण बुद्ध अमर-बोल
प्राणों में सुधा घोल
शांत करें युद्ध रोल
भीति करें छीन
अणु बम की भीम ज्वाल
आसुरि हिंसा कराल
आत्म ज्योति-प्लवन बीच
हो रही विलीन
शमित हुई ध्वंस-वृत्ति
हिंस्र तर्जना ।
सिंहनाद सदृश करें
वीर गर्जना ।

राष्ट्र पंचशील-निष्ठ
गांधी-गरिमा-गरिष्ठ
बुद्ध-ज्ञान से वरिष्ठ
प्रेम-पथ-पला
हरे भ्रांति हरे त्रास
करे मोहपाश नाश
शांति-गीत गूंज उठे
विश्व-मगला
विपुल विश्व का प्रसार
भारत पर है निसार
जग का यह एक नीड
विश्व-भारती
मानव का मिलित रूप
इसमें विम्बित अनूप
जन-मन नित प्रेम-मगन
करे आरती
अग-जग में करे सतत
शाति-सर्जना
सिंहनाद सदृश करें
वीर गर्जना।

नहीं दैन्य नहीं भीति
भारत में बहे प्रीति
मुक्त प्राण युक्त हृदय
बढ़ें वीर-वृंद
जीवन में अमृत सींच
आंधी तूफान बीच
अमर ज्योति स्फुरित किा
गावें जय हिन्द
जय जय जय मातृभूमि

जय जय जय हिंद
एक देश एक प्राण
एक योजना
सिंहनाद सदृश करें
वीर गर्जना ।

श्री इलाचन्द्र जोशी

जन्म, सन् १९०२ । प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा आलोचक । प्रमुख रचनाएँ विजनवती (कविता-संग्रह), लज्जा, सन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, निर्वासित, सुबह के भूले, जिप्सी, जहाज का पंछी (उपन्यास), विवेचना, साहित्य-सर्जना (आलोचना), प्रयाग के 'संगम' और बम्बई के 'धर्मयुग' का संपादन कर चुके है । संप्रति आकाशवाणी के दिल्ली-केन्द्र से सम्बद्ध ।

तेलुगु

कवि :
श्री जी० जाषुआ

रूपान्तरकार :
श्री हंसकुमार तिवारी

जन्म, सन् १८९५। प्रमुख कवि। रचनाएँ : फिरदौसी (प्रबन्ध-काव्य), गब्बिलमु, मुमताज। आकाशवाणी के मद्रास-केन्द्र से सम्बद्ध।

रत्नाञ्जलि

१

स्वातंत्र्य वीर बीजमुलु नाटिना नाटि
शूर सैनिक बाहु सारमुनकु ।।
घोराहकमुना झाँसी राणी चिन्दिन।
प्रति लेनि नुलिवेडी रक्तमुनकु।

गुजरातु मुनि पादरज मटनिक्नि
शात्यहिंसा नयस्तम्भमुलकु
देश नाय्कुल शक्तिस्फार रच्छित
प्राज्य स्वतत्र साम्राज्य मुनकु
पोरति कुनि वत्सु सद्भक्ति पुष्परसमु
दिव्य मणिमय हृदय पात्रिकल निंचि
अर्घ्यमिड्डुचुन्न दीयरुणारुणार्द्र
रागरजित प्रभात रम्यलक्ष्मी ।

२

समशीतोष्ण सुखाभिरामयु
अहिंसाधर्म सिद्धातवन्तमु
नानाविध रत्नुजित
समुद्रप्रावृतद स्मदीय
महाभारत खडराजमु
कुलव्याणोग्र पूतकार धूममु
नामूलमुग नापागि
सुख सम्पच्छान्तु लनिमपुणि ।

३

खादीर टनपु विन्ततुम्यदलु
झकरीचे नीइटिलो
नीद्ररिद्रयमु गोचिपातवाले
वन्येन गाँधी वैरागी बालादिच्या प्रभतो स्वतत्रमनु
सध्यालक्ष्मीतो तेच्य, मेणेदी तुल्यटि मदाहारामुला,
सम्मीछिम्प हिंदूरमा ।

रत्नाञ्जलि

जिन हाथों ने युगो युगों तक,
अपनी सारी अतुल शक्ति से,
आजादी के बिरवे रोपे,
अपने मन की परम भक्ति से,

जिस लक्ष्मी बाई ने सींचा,
उष्ण रक्त पौधो पर अपना,
जिसके बल पर उगते पौधे,
देख सके आगे का सपना।

जिसकी शुभ्रज्योति को छूकर
तिमिरपुंज हिंसा के भागे,
शाति स्नेह के जयस्तम्भ,
जिसकी पदरज को छूकर जागे,

वह गुजरात सत औ उसके,
वे अनत, जागृत अनुयायी
जिनकी कुशल सतर्क बुद्धि ने
मूर्ति देश की नयी बनायी।

आज प्रभाते, वीणाहाते,
हृदय-पात्र में मधुरस भर कर,
उषा लक्ष्मी अर्घ्य ढालती है,
उनके महान चरणों पर।

भेद-विभेद-व्याल-विष जिसका,
क्षीण हो गया, क्षीण हो रहा,
हां, आसिंधु हिमाचल चलकर
जो समता के बीज बो रहा,

समशीतोष्ण, सुखाभिराम
करुणा-उदार, सिद्धातवत जो,
नानाविध रत्नुंजित, सागर-प्रावृत
अपना भरतखंड सो,

हे भारत स्वातन्त्र्य लक्ष्मी
सब दारिद्र्य तुम्हारे घर का,
जो हर कर ले गया,
दे गया तुम्हें सलौना,
प्यारा चरखा।

उस चरखे की गूंज
गुंजाती रहे देश का कोना कोना।
स्वर्ण अतीत आज हो कर्मठ
हो निःशेष भाग्य का रोना।

श्री हंसकुमार तिवारी

जन्म, सन् १९१८, मानभूमि, बंगाल। गीतकार कवि। प्रमुख रचनाएँ: रिमझिम, नवीना, तथा अनागत (कविता संग्रह)। मानसरोवर, गया (बिहार)।

कवि :
श्री मोहनसिंह

रूपांतरकार :
श्री हरिकृष्ण प्रेमी

जन्म, सन् १९०४। प्रमुख कवि और आलोचक। रचनाएँ : सावे पत्तर, अधवाट, तथा आवाजाँ आदि कविता-संग्रह। 'पंजदरिया' के सम्पादक। जालन्धर सिटी, पू० पंजाब।

पंजाबन दा गीत

मैं पंजाब दी कुडी
पंज दरयावाँ दी परी
मेरियाँ गोल गोल बाँही
लस्सी रिड़क रिड़क बणियाँ

मेरा पतला पतला लक्क
पीघ झूट झूट वणियॉ
मेरा गोरा गोरा रग
मक्खण पेडे खा खा बणियाँ
मेरियाँ साफ साफ अक्खाँ,
खुलियाँ पौणाँ भखभख वणियॉ
पर मै तेरी ना वणॉ
मुड्या छड दे मेरी बॉह

भावे मुडा तूं जवान
तेरी लोहे वरगी जान
तेरी छिंजाँ विच घुमकार
तेरा पर्‌ह्यॉ विच सतकार
तेरी त्रिजणाँ विच भिणकार
भावे मिलखाँ दा तूं वाली
तेरी चाँदी जडी पॅजाली
तेरे हेठ हजारी घोडा
तेरे पैर ज़री दा जोडा
फिर वी तेरी ना बणाँ
मुड्या छड दे मेरी बॉह

जिस दिन बणे देश ते भीड
आवण वैरी घत वहीर
जिस दिन पज दरयाँ दा माण
लग्गे हथ वैरी दे जाण
जिस दा पहिला खून कढे
जेहडा पहले पूर चढे
जेहडा सब तो अग्गे लडे
वे मै ओस दी वणाँ

वे मै श्रोस लई जीयाँ
वे मै श्रोस लई मराँ
मै पजाब दी कुड़ी
पज दरयावाँ दी परी

पंजाबिन का गीत

मै वाला हूँ पंजाब की,
मै परी पाँच दरयाब की।

मेरी वाहें गोल बनी है
लस्सी रिडक रिड़क कर,
मेरी पतली कमर बनी है
झूलों पर पेंगें भर,
मेरा गोरा रग बना है
गोरा माखन खा कर,
मेरी उजली उजली श्राँखें
खुली हवाएँ पाकर।

पर मै न बनूँगी तेरी,
छोरे, छोड कलाई मेरी।
मै वाला हूँ पंजाव की,
मै परी पाँच दरयाव की।

माना नई जवानी तेरी
लोहे जैसी जान,
हर दगल में धूम मची है
हर मजमे में मान,
त्रियाजनों की महफिल में भी,
तेरा ही गुणगान।
माना तू है वैभवशाली
तेरी चाँदी जडी पंजाली,
तेरे पास हजारी घोड़ा,
तेरे पांव जरी का जोड़ा।

पर मैं न बनूंगी तेरी
छोरे, छोड कलाई मेरी।
मैं बाला हूँ पंजाब की,
मैं परी पाँच दरयाब की।

जिस दिन विपदा पडे देश पर
रिपु-दल बादल-सा घिर आवे,
रिपु के हाथ पंचनद का यश
जिस क्षण संकट में पड जावे,

सबसे पहले खौले जिसका
रक्त, नशा रण का चढ़ जावे,
सबसे आगे बढ वैरी से
लडकर अपना बल दिखलावे।

मैं उसकी ही बन पाऊँगी,
मैं उसके ही लिए जियूंगी,
और उसीके लिए मरूंगी।
मैं बाला हूँ पंजाब की,
मैं परी पाँच दरयाब की।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी

जन्म, सन् १९०८, गुना (ग्वालियर)। कवि और नाटककार। प्रमुख रचनाएँ आँखों मे, अनन्त के पथ पर, जादूगरनी, अग्नि-गान, प्रतिमा, वन्दना के बोल तथा रूप-दर्शन आदि कविता-संग्रह। आकाशवाणी के जालन्धर-केन्द्र से सम्बद्ध।

कवि :
श्री प्रेमेन्द्र मित्र

रूपान्तरकार :
श्री भवानीप्रसाद मिश्र

जन्म, १६०४, काशी में। प्रमुख कवि और कथाकार। कविता, कहानी, उपन्यास, बाल-साहित्य तथा अनुवाद आदि के लगभग ४० ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। आजकल आकाशवाणी के कलकत्ता-केन्द्र से सम्बद्ध।

जारा काज करें

आमि कवि जत कामारेर-आर कांसारीर
आर छूतोरेर मुटे मजूरेर
आमि कवि जत इतरेर।

आमि कवि भाई कर्मेर आर घर्मेर
विलास विवश मर्मेर जत स्वप्नेर तरे भाई
समय जे हाय नाइ।

माटी माँगे भाई हलेर आघात
सागर मागिछे हाल,
पाताल पुरीर बन्दिनी धातु
मानुषेर लागि काँदिया काटाय काल,
दुरन्त नदी सेतु-बन्धने बाँधा जे पडिते चाय,
नेहारि आलसे निखिल माधुरी
समय नाइ जे हाय।

माटीर बासना पुराते घुराइ
कुम्भकारेर चाका,
आकाशेर डाके गडि आर मेलि
दु साहसेर पाखा,
अभ्रलिह मिनार-दभ तुलि
धरणीर गूढ आशार देखाइ उद्धत अगुलि।

जाफ्‌रि काटानो जानालाय बुझि
पडे ज्योत्स्नार छाया,
प्रियार कोलेते कादे सारग
घनाय निशीथ माया
दीपहीन घरे आधो निमीलित-
से दु' टि आँखिर कोले
बूझि दु'टि फोटा अश्रुजलेर
मधुर मिनति दोले।

से मिनति राखि समय जे हाय नाइ
विश्वकर्मा जेथाय मत्त कर्मे हाजार करे
सेथा जे चारण चाइ।

कामारेर साथे हातुडि पिटाइ
छुतारेर धरि तुरपुन,
कान से अजाना नदीपथे भाइ
जोयारेर मुखे टानि गुन ।

पाल तुले दिये कोन से सागरे
जाल फेलि कान दरियाय
कान से पाहाडे काटि सुडग
काथा अरन्य उच्छेद करि भाइ
कुठार घाय ।

सारा दुनियार बोझा वइ आर खोया भागि
आर खाल काठि भाइ पथ बनाइ,
स्वप्न वासरे विरहिणी वाति मिछे सारा रात्रि
पथचाय,
हाय समय नाइ ।

जो जुटे हुए हैं धंधों में

मैं उन सब लोगो का कवि हूँ
जो जुटे हुए हैं धंधों में,
मैंने विलास को नहीं बुना
अपने शब्दो में, छन्दों में ।
मैं उनका कवि हूँ, जो लोहे,
लकड़ी, मिट्टी में गड़ते है,
मैं उनका कवि हूँ, तरह तरह
की चीज़ो को जो गढते हैं ।
मैं मेहनत और पसीने के स्वर गाता हूँ ।
मैं अपने शब्दो को
विलास की मृत्यु नहीं दे पाता हूँ ।

धरती व्याकुल है हल की ठोकर खाने को,
सागर की लहरें व्याकुल हाल सम्हाने को
पृथ्वी के भीतर लोहा सोच रहा है यों,
कोई बलशाली खोद-खाद कर
मुझे निकाल न लेता क्यों ?
नदियों की इच्छा है कि कोई
उनकी छाती पर पुल बांधे,
फिर कैसे मुमकिन है कि क़लम मेरी
केवल शोभा साधे ?
मैं उन सब लोगों का कवि हूँ,
जो जुटे हुये हैं धन्धों में,
मैंने विलास को नहीं बुना,
अपने शब्दों में, छन्दों में ॥

मैं कुंभकार का चाक घुमाता हूँ,
इसलिये कि मिट्टी की इच्छायें पूरी हों,
मैं पंख बनाता हूँ, उनको फैलाता हूँ,
इसलिए कि कम मानव-मानव की दूरी हो ।
मैं अभ्रंकश महलों की ईंटें जोड़ रहा,
मैं तरह-तरह के कर्मों के आनन्द-अखाड़े
गोड़ रहा ।

झिलमिली पड़ी है वातायन पर जहाँ,
झांक रहा है शीत-किरण-धर जहाँ,
जहाँ पिया का अंक, सँभाले बीन,
गीत आंसुओं के झरता है दीन,
उस दीपहीन ग़मगीन कक्ष में हाय,
मुझ कर्म-व्यस्त के स्वर की जाय बलाय ।

मैं वहाँ, जहाँ शत-लक्ष भुजायें व्यस्त,
मैं वहाँ जहाँ मानवता मेरी त्रस्त,
मैं उन सब लोगों का कवि हूँ,
जो जुटे हुए हैं धन्धों में,
मैंने विलास को नहीं बुना,
अपने शब्दों में, छन्दों में ।

मैं लुहार का घन हूँ चोट लगाता हूँ,
मैं सुतार का बरमा, छेद गिराता हूँ,
मैं समुद्र में साध रहा हूँ हाल,
मैं प्रलय-वात में खोल चुका हूँ पाल।

मुझको जाना है सात-समुंदर पार,
मैं छोड नहीं सकता अपनी पतवार,
मैं अगम्य पर्वत की बना सुरंग,
मैं घने जगलो का हूँ परशु-प्रसंग।

मैं तरह तरह के करता हूँ धन्धे,
इसलिये कि जग का बोझ सँभाले हैं
मेरे कन्धे।
मैं लम्बी गहरी नहरें काट रहा,
मैं देश-विदेशों खाई पाट रहा।

झिलमिली पड़ी वातायन का चदा,
मैं कैसे देखूँ, बुला रहा धन्धा।
मैं क्षमा चाहता हूँ भाई प्रेमी—
मैं अलग नियम का बना आज नेमी।

मैं उन सब लोगों का कवि हूँ,
जो जुटे हुए हैं धन्धो में,
मैं बुन न सकूँगा बात तुम्हारी,
इन शब्दों, इन छन्दो में।

कवि
श्री बी० बी० बोरकर

रूपांतरकार .
श्री गिरिजाकुमार माथुर

प्रमुख कवि और कथाकार। रचनाएँ जीवन-संगीत दूध-सागर, आनन्द भैरवी, भावीण। आकाशवाणी के पूना केन्द्र से संबद्ध।

दिव्यत्वाची प्रतीती

तथें कर माझे जुलती
दिव्यत्वाची जेथ प्रतीती

हृन्मंदिरिं संसृतिगरस्वागत
हँसतचि करिती कुटुंबहितरत
गृहस्थ जे हरि उरात रिझवित

सदनी फुलबागा रचिती
तेथे कर माझे जुळती

ज्या प्रबला निज भावबलाने
करिती सदने हरिहरभुवने
देव - पतींना वाहुनि सु-मने
पाजुनि केशव वाढविती
तेथे कर माझे जुळती

गाळुनियाँ भालीचे मोती
हरीकृपेचे मळे उगविती
जलदाँपरि येउनियाँ जाती
जग ज्यांची न करी गणती
तेथे कर माझे जुळती

शिरी कुणाच्या कुवचनवृष्टी
वरिती कुण अव्याहत लाठी
घरिनी कुण घाणीची पाटी
जे नरवर अितरासाठी
तेथे कर माझे जुळती

यज्ञी ज्यांनी देउनि निजशिर
घडिले मानवतेचे मंदिर
परी जयाच्या दहनभूमिवर
नाहि चिरा नाही पणती
तेथे कर माझे जुळती

स्मिते ज्याची चैतन्यफुले
शब्द ज्याचे नवदीप-कळे
कृतीत ज्याच्या भविष्य उजळे
प्रेम विवेकी जे खुलती
तेथे कर माझे जुळती

जिये विपत्ती जाली, उजली
निसर्गलीला निली काजली
कथुनि कायसे कालिज निखली
अकाची सगली वसती
तेंथे कर माझें जुलती

मध्यरात्रि नभघुमटाखाली
शातिशिरी तम चवऱ्या ढाली
त्यक्त बहिष्कृत मी ज्या काली
अकाती डोले भरती
तेंथे कर माझे जुलती

दिव्य के दर्शन

होती जहाँ प्रतीति दिव्य की
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

जो हँसकर सहते जग के शर
प्रियजन के हित में रत रहकर
फूल बाग से जिनके घर पर
स्वयं रीझ जाता है ईश्वर

साधारण गृहस्थ जन के प्रति
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

भावमयी गृहिणी सबलाएँ
मिट मिट कर जो स्वर्ग बसाएँ
फूल पाँखुरी सी अर्पित हो
जुग जुग कान्हा गोद खिलाएँ

उन माता ममताओं के प्रति
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

जिस माथे पर मोती सा श्रम
झलमल हो, ज्यो अनझर शबनम
देव कृपा सी फसल उगाकर
मिटते, ज्यो उडते बादल नम

उन अनाम आत्माओ के प्रति
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

औरो के दुख बलिदानो को
कुत्सा, लाछन, अपमानो को
अपने सिर माथे लेते है
जो कलक-तिलकित बाणों को

उन नर-देवो के चरित्र पर
मै प्रणाम सा झुक जाता हूँ।

शीश होम देकर जो अपना
करते मानव-मदिर रचना
जिनकी दहन-भूमि पर अकित
चिन्ह न कोई, जले न दियना

मानवता निर्माता के प्रति
मै प्रणाम सा झुक जाता हूँ

स्मित में फूल-चेतना खिलते
शब्दो में दीपक से जलते
जिनकी हर कृति में भविष्य के
नए क्षितिज हर रोज उजलते

प्रेम-विवेकमयी गरिमा पर
मै प्रणाम सा झुक जाता हूँ

जल कर उजले विपति नुकीली
है विराट छवि सांवर नीली
उठती एक गूंज अंतर में
अक्षय लीला देख रँगीली

व्यापक रमते एक तत्व पर
मै प्रणाम सा झुक जाता हूँ

डोल रहे नभ गुम्बद के तल
तम का चॅवर शांति पर प्रतिपल
त्यक्त, वहिष्कृत सा होता मै
आँखो में भरता आंसू जल

उस एकात शात बेला में,
मै प्रणाम सा झुक जाता हूँ।

श्री गिरिजाकुमार माथुर

जन्म सन् १६१६, अशोकनगर, ग्वालियर। नई हिंदी कविता के प्रमुख कवि। रचनाएँ मजीर, नाश और निर्माण, तथा धूप के धान, (कविता-सग्रह)। आकाशवाणी, भोपाल से सम्बद्ध।

कवि :
श्री जी० शंकर कुरुप्प

रूपांतरकार :
डा० हरिवंशराय बच्चन

जन्म, सन् १६००, उत्तर त्रावणकोर मे। रचनाएँ : सौन्दर्य-पूजा, तथा वसन्तोत्सव (कविता सग्रह)। आकाश-वाणी के त्रिवेन्द्रम् केन्द्र से सम्बद्ध।

सागर-गीतम्

१

श्रान्तमवर निदाघोष्मलस्वप्ना क्रान्त
तान्तमारब्धक्लेशरोमन्ध मम स्वान्त

दृप्तसागर ! भवद्रूपदर्शनालर्ध
सुप्तमेत्रात्मावन्तर्लोचन तुरक्कुन्नू

नीयपारतयुटे नीलगभीरोदार—
च्छाय, निन्नाश्लेषत्तालेन्मन कुलिर्क्कुनु

क्षुद्रमामेन् कर्न्नत्ताल् केल्क्कुवानाकात्तोरु
भद्र नित्यतयुटे मोहन गानालापाल्

उद्र सफणोल्लोल कल्लोलजाल पोक्कि
रौद्रभगियिलाटि निन्निटु भुजगमे ।

वान तन् विशालमा श्यामवक्षस्सिल् कोर्त्ते—
ट्टनान्द मूर्च्छाधीनमगने निल कोलवू

तत्तुकेन्नात्माविकल् ।—
कोत्तुकेन् हृदन्तत्तिल्
उत्तुगफणाग्रत्तिल्
एन्नेयु वहिच्चालु ।

२

नीरद लता गृह पूकियिप्पोड्गुतन्ति
नीरवभिरिक्कुन्नु रागविभ्रममेन्ति

हृदय द्रविप्पिक्कुमेतोरुज्वलगान
उदयत्लय भवानालपिक्कुन्नू स्वैर ?

कनकनिचोलमून्र्नानिग्नोरस्साय् मेवु
अनवद्यया सन्ध्यादेवितन् कपोलत्तिल्

क्षणमुटोलिक्काराय् मिन्नुन्नु ताराबाष्प
कणमोन्नतिवाच्य नव्यनिर्वृतिबिन्दु ।

अगिल् निन्नरिंञु आन् पूर्णामामात्माविकल्
तिंगिटु मनुभव पकरु कलाशैलि

नित्यगायक ! पटिप्पिक्कुकेन् हृत्स्पन्दत्ते—
स्सत्य जीविताखड गीतत्तिन् तालक्रम ।

जीवित गान, काल
तालमात्माविन् नाना—
भावमोरोरो राग
विश्वमडल लय ।

· ३

अम्पिलिच्चषकत्तिल् नुरयु दिव्यानदं
अम्पिलेन्तिक्कोटेत्ति शुक्लपचमि मद

आनतमुखियुटे नीलभ्रू निडलिच्च
पानभाजन, वेम्पु करत्ताल् वय वागि

फेनमजूलस्मित कलर्न्नु नुकर्न्नन्य
ज्ञानमेन्निये पाटु हृर्षजृ भितसत्व,

भावत्ताल् तरगायमाणमा विरिमार—
त्तावधु तल चाच्चु निल्कुन्नु लज्जामूक

अल्लणिक्कुडलितन् श्लथवेरि यिल् निन्नुल्
फुल्लामामोरायिर मुल्लमोट्टु कलिता

विंवित ताराजातमाविल्ल नून-निन्टे
कम्पित स्निग्धोरस्सिल् कोडिञुल्लस्सिक्कुन्नु

कामुक ! मुकरुक,
निन्ने मूटुक, ञाना
प्पूमुटिच्चुरुलिन्नु
सौभाग्यमाशसिप्पू ।

· ४ :

निद्रयिल् निलीनमायकडिञू पारू वानु;
हृद्रम ! तनिच्चायिच्चेमञू नायु ञानु,
निन्नुटेयगाधमामाशयरहस्यत्ते—
योन्नु नी ममात्माविन् कर्णत्तिल् मन्त्रिच्चालु !

धीरमामोरु परिवर्तनोत्साहत्तिन्टे
गौरव विंगु गानवीचिकलुच्चेडात्मन् ।
जीवित परिमितियेतुमे सहिक्कात
दैविकास्वास्थ्य पूण्ट निन्निल् निन्ननुवेल
स्थितिपालन नित्यधर्माय् व्याख्यानिक्कु
क्षितियेस्समुल्कम्पयाक्कुमारुयरुन्नू ।
निश्चय, त्वल् सन्देश वेपमुण्टाक्कुन्नुण्टु
निश्चल नभश्चरनक्षत्र साम्राज्यत्तिल् ।
क्षीणमामेन्नात्मावु
तकर्न्नालि् तकनर्नोट्टि,
वीणयाक्कुक भव
दाशय गान चैवान् ।

सागर-गीत

: १ :

उत्तप्त ग्रीष्म के सपनो की छाया में श्रांत खडा अंबर,
बीते अवसाद विषादो की सुधियो से शिथिल पडा अंतर।
यह देख कि आगे दर्पभरे सागर की उभरी छाती है,
मेरे अधसोए अंतर की आँखें सहसा खुल जाती हैं।
हे सिन्धु नील, गभीरोदर, तुममें असीम की है छाया,
तुमको आलिगन में भरकर विगलित मानस, पुलकित काया
मानव की सीमित श्रुतियों में जो पडे नहीं अब तक गाने,
वे मोहन गान असीमित के तुम सुनते रहते मनमाने।
तुम नर्तन करते हो उनपर फैला शत शत लहरो के फन,
जिनका कल्लोल दिया करता है श्याम गगन को आमंत्रण।
पर गगन तुम्हारी गोदी में आकर नीरव निस्पद हुआ,
क्या अपने विषमय दंतों से तुमने उसका वर वक्ष छुआ?

तुम नाचो मेरे अंतर में,
तुम काटो मेरे अन्तर को,
अपने फैले फन पर बिठला
तुम मुझे उठा दो अंबर को।

: २ :

प्रणयी, मन को हरनेवाले क्या राग सुनाते तुम नीचे,
बादल घर में बैठी सुनती सध्या रानी आँखें मीचे।

क्या देख रही होगी सपने अपने कंचन अवगुंठन में,
क्या जाग पडी होगी सुधियाँ सोई खोई उसके मन में ?

उसको यह ज्ञात नहीं होता, ऐसी लय में तन्मय होती,
कब खिसक पडा उर से अचल, कब ढुलक पडा दृग से मोती।

पच्छिम के छज्जो के ऊपर अब नहीं सुनहला बादल है,
तारो में आँसू की बूँदें, तम में आँखो का काजल है।

कुछ ऐसी ही तन्मयता में मैंने भी गीत सुनाया है,
अपनी पीडा को स्वर देना तुमने मुझको सिखलाया है।

गायक नायक मेरी छाती की धडकन को दो ताल वही,
वह जीवन का सगीत जिसे बन्दी कर सकता काल नहीं।

यह जीवन ही वह गायन है
जिसपर देता है ताल समय,
भावो में जिसकी रागिनियाँ,
सारा जग मंडल जिसकी लय।

: ३ :

मृदु मद चरण नभ पथ पर धर लो, शुक्ल पंचमी आई है,
किरणों के हाथो चाँदी के चन्दा का प्याला लाई है।

है छलक रही उसके अन्दर स्वर्गिक, स्वर्णिम, फेनिल हाला
मत चन्द्र कलंक उसे कहना जो दीख रहा काला-काला।

मधुबाला की श्यामल अलको, भौहो की यह परछाँई है,
लहरो के हाथ इसे पकड़ो, पीने की वेला आई है।

पीकर जी भर मदिरा फेनिल अधरो से तुम मुसकाते हो,
तुम झूम झूम कर मस्ती में मस्ती का राग उठाते हो।

वक्षस्थल के ऊपर लेटी, लज्जा में डूबी प्राण-प्रिया,
तुम जब जब आहें भरते हो, उठता दबता हर बार हिया।

उसकी लट में गूंथी कलियाँ क्रीडा में टूट बिखर झड़तीं
यह कौन समझता है तारक मंडित नभ की छाया पडती।

कामुक उन अलकों को चूमो,
बँध जाओ उनके पाशों में,
तुम डाह नहीं, स्वाभाविकता
देखो मेरे उच्छ्वासों में।

४

निद्रा में डूबी है अवनी, निद्रा में डूबा है अवर,
जागृति की लहरो पर केवल उतराते हैं हम तुम, सहचर।

अपने अन्तर के जीवन का कुछ भेद मुझे बतलाओगे ?
मेरे मानस की श्रुतियों की क्या तुम कुछ प्यास बुझाओगे ?

हे चड हृदय, क्यो जीवन की सीमाएँ तुमसे डरती हैं ?
वे स्वर्गिक चाहें कौन तुम्हें बेचैन बनाया करती हैं ?

वे बाधाएँ हैं कौन, जिन्हे तुम दूर हटाना चाहोगे ?
वे परिवर्तन हैं कौन, जिन्हें तुम जग में लाना चाहोगे ?

वह क्रांति-सँदेसे कौन, तुम्हारी तुग तरगें लाती हैं,
जिनको सुनकर जड रूढ़ि-बँधी धरती विचलित हो जाती है ?

निश्चय ही उन सदेशो की ज्वालामय वाणी से डरकर,
निश्चल नभचर नक्षत्रों के साम्राज्य कँपे होंगे थर थर।

इनसे मेरा दुर्बल अन्तर
छनता है तो छन जाने दो,
सागर अपने सदेशों की,
मुझको वशी बन जाने दो।

कवि :
श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जन्म, १८९७, मयाना गाँव, उज्जैन। प्रमुख राष्ट्रीय तथा दार्शनिक कवि। रचनाएँ : कुंकुम, रश्मि-रेखा, अपलक, क्वासि, ऊर्म्मिला (प्रबन्धकाव्य) और विनोबा-स्तवन। राज्य-सभा के सदस्य। ५, विंडसर प्लेस, नई दिल्ली।

गायन-स्वन भर दो

मन-मन में गायन-स्वन भर दो,
मरु कण-कण को रस निर्झर दो।

१

प्राण-प्रणोदन निम्न-गमन-रत,
जीवन मे उत्पीडन शत-शत,
जड उद्धत, चेतन क्षत-विक्षत,
इनको अरुज अनामय कर दो,
मन-मन मे गायन स्वन भर दो।

२

खेद-स्वेद से क्लिन्न मनुज-तन,
छिन्न-भिन्न इसका अपनापन,
खिन्न ज्ञान, कुंठित संवेदन,

मृण्मय तृण को चिन्मय कर दो,
मरु कण-कण को रस निर्झर दो ।

३

सम-लय-यति-गति-ताल-राग-रति,
यह जग-जन-जीवन की सद्गति,
हुई विकृत, विभ्रमित, अनृत अति,

इसे उदात्त ऋतम्भर स्वर दो,
मन-मन में गायन-स्वन भर दो ।

४

बने असुन्दर, सुन्दर, सन्मय,
क्षिप्त चित्त बन जाए तन्मय,
रजकण तव कर बने हिरण्मय,

यों इस क्षर को पद अक्षर दो,
मरु कण-कण मे मधुरस भर दो ।

कवि :

श्री सुमित्रानंदन पंत

जन्म १६००, कौसानी, अल्मोडा में। छायावाद के प्रमुख प्रवर्तक कवि। रचनाएँ : पल्लव, वीणा, ग्रन्थि, गुञ्जन, ग्राम्या, पल्लविनी, स्वर्ण-धूलि, स्वर्ण-किरण तथा अतिमा आदि कविता सग्रह। आकाशवाणी के हिन्दी कार्यक्रमों के प्रमुख परामर्शदाता। निवास, इलाहाबाद।

शांति और क्रांति

शाति चाहिए शाति ! रजत अवकाश चाहिए
मानव को, मानस वह महत् प्रकाश चाहिए,
आत्मा वह हाँ, अन्न, वस्त्र, आवास चाहिए,
देही भी वह आज मुख्यत देही वह, क्षण
मनोविलासी, आत्मा बनना है कल उसको !

हाय, अभागा, बुरी तरह से उलझ गया वह
बाहर के अग जग मे, बाहर के जीवन मे
जहाँ भयानक अधकार छाया युगात का !
मानव के भीतर का जग, भीतर का जीवन
आज खोखला, सूना, जीवन्मृत, छाया-सा
गत सस्कारो से चालित, प्रेतो से पीडित !!

खाई खदक मे, खोहो मे, बीहड मग मे
भटक गए जन के पग सकट की रेती मे !
दलदल मे फँस गया मत्त भौतिक युग, गज सा,
अपनी ही गरिमा के दु सह बोझ से दबा !
जीवन-तृष्णा, चक्की के पाटो सी, उसके
घायल पैरो से है लिपट गई, बेडी बन !
धृष्ट, निरकुश, उच्छृ खल नर, आज शील के
स्वर्णाकुश के प्रति असहिष्णु, अहता शासित !

सोच रहा मै, नही, स्पष्टत देख रहा मै,
महत् युगातर आज उपस्थित मनुज द्वार पर।
बदल रहे मानव के भौतिक, कायिक, प्राणिक,
सूक्ष्म मानसिक स्तर, आध्यात्मिक भुवन अगोचर !
बदल रहा, निस्सशय, मानव ईश्वर भी अब,
युग युग से जो परिचालित करता आया नित
मानव जग को, लोक-नियति को, जीवन मन को !
जैवी स्थिति से उच्च भागवत स्थिति तक, सप्रति,
घूम रहा युग परिवर्तन का चक्र अकुठित।

आज घोर जन-कोलाहल के भीतर भी मै
सुनता हूँ स्वर शब्दहीन सगीत अतद्रित
मन के श्रवणो मे जो गूँजा करता अविरत !

इस अणु उद्जन के विनाश के दारुण युग मे
सृजन निरत है सूक्ष्म, सूक्ष्मतर अमर शक्तियाँ
मानव के अतरतम मे, जिनका स्वप्नो का
अक्षय वैभव, अतिक्रम कर युग के यथार्थ को,
अकथित शोभा भुवनो मे पल्लवित हो रहा
मानस की अपलक आँखो के सम्मुख प्रतिक्षण।
सूक्ष्म सृजन चल रहा नाश के स्थूल चरण धर।

कवि कपोल-कल्पना नही अनुभूत सत्य यह
घोर भ्रातियो के युग का निर्भ्रान्त सत्य यह
आरोहण कर रही मनुज-चेतना निरतर
शिखरो से नव शिखरो पर अब, उठती-गिरती,
सघर्षण करती, कराहती चिर अपराजित।
इसीलिए, मै शाति क्राति, सहार-सृजन को,
विजय-पराजय, प्रेम-घृणा, उत्थान-पतन को,
आशा-कुठा को, युग के सुदर-कुरूप को
बाहो में हूँ आज समेटे, उन्हे परस्पर
पूरक, एक, अभिन्न मान कर, युग-विवर्त के
क्रन्दन-किलकारो मे ध्यानावस्थित रह कर।

विस्मय क्या, यदि बदल रहा आर्थिक, सामाजिक
धार्मिक, वैयक्तिक मानव? यदि मनुज चेतना
अब सामूहिक, वर्ग हीन बन रही बाह्यत,
बिखर रहे यदि विगत युगो के मन सगठन,
क्या आश्चर्य, बदलता यदि आमूल मनुज जग!

स्वय, युगो का मानव ईश्वर बदल रहा अब,
निश्चेतन, उपचेतन, अतश्चेतन के जग
परिवर्तित हो रहे, नए मूल्यो मे विकसित।
उन पर आश्रित निखिल सास्कृतिक सम्बन्धो का

रूपान्तर हो रहा आज, आवर्त शिखर में
घूम, पुन जो सयोजित हो रहे धरा पर।

विगत निषेधो, रूढि, वर्जनाओ को सहसा
छिन्न-भिन्न कर अपने प्रलयकर प्रवेग मे,
विस्तृत कर जीवन पथ, नि सृत प्राणो का रथ !
नैतिक-आध्यात्मिक अतीत सक्रमण कर रहा
निखर रहे आदर्श लोक, सौन्दर्य तत्व नव !

आज नया मानव ईश्वर अवतरित हो रहा
स्वर्ण रश्मियो से स्मित ऊषाओ के रथ पर,
तडित् स्फुरित लतिकाओ मे लिपटे पर्वत सा,
अगणित सुर वीणाओ के झकृत निर्झर सा,
उन्मद भृगो से गुजित नव कुसुमाकर सा !

भरते शत सीत्कार आज वाहर गत पतझर
सुलग रहा भीतर नव मधु का स्वर्गिक पावक !
आत्मा के गोपनतम अतर मे प्रवेश कर
मानव मन, हो अधिक पूर्ण, खुल रहा बहिर्मुख !
आज नाश के कर गढ रहे नवल मानव को,
नव इद्रिय वह, विकसित इद्रिय अति इद्रिय अब !

बदल रहा अब मानव ईश्वर बदल रहा अब
मानव अतर, मानवता का रूपान्तर कर !

कवि :

श्री भगवतीचरण वर्मा

जन्म, सन् १६०३, शफीपुर, उन्नाव। प्रमुख कवि, कहानीकार और उपन्यासकार। रचनाएँ : चित्रलेखा, तीन वर्ष, टेढे मेढे रास्ते, आखिरी दाँव (उपन्यास), प्रेम-सगीत, मानव तथा मधु-कण (कविता-सग्रह)। आकाशवाणी के लखनऊ-केन्द्र से सम्बद्ध।

समर्पण

अर्पित मेरी भावना ! इसे स्वीकार करो !

तुमने गति का सघर्ष दिया मेरे मन को,
सपनो को छवि के इन्द्रजाल का सम्मोहन,
तुमने आँसू की सृष्टि रची है आँखो मे,
अधरो को दी है शुभ्र मधुरिमा की पुलकन !

उल्लास और उच्छ्वास तुम्हारे ही अवयव,
तुमने मरीचिका और तृषा का सृजन किया,
अभिशाप बनाकर तुमने मेरी सत्ता को
मुझको पग पग पर मिटने का वरदान दिया।

मैं हँसा तुम्हारे हँसते से सकेतो पर,
मै फूट पडा लख वक भृकुटि का सचालन,
अपनी लीलाओ से हे विस्मित और चकित,
अर्पित मेरी भावना इसे स्वीकार करो।

अर्पित है मेरा कर्म इसे स्वीकार करो।
क्या पाप और क्या पुण्य इसे तो तुम जानो
करना पडता है केवल इतना ज्ञात यहाँ।
आकाश तुम्हारा और तुम्हारी ही पृथ्वी
तुममे ही तो इन साँसो का आघात यहाँ।

तुममे निर्बलता और शक्ति इन हाथो की
मै चला कि चरणो का गुण केवल चलना है,
ये दृश्य रचे, दी वही दृष्टि तुमने मुझको,
मै क्या जानूं क्या सत्य और क्या छलना है।

रच रच कर करना नष्ट तुम्हारा ही गुण है
तुममें ही तो है कुठा इन सीमाओ की,
हे निज असफलता और सफलता से प्रेरित
अर्पित है मेरा कर्म इसे स्वीकार करो।

अर्पित मेरा अस्तित्व इसे स्वीकार करो।
रगो की सुषमा रच मधुऋतु जल जाती है,
सौरभ बिखरा कर फूल धूल बन जाता है,
धरती की प्यास बुझा जाता गल कर बादल,
चट्टानो से टकरा कर निर्झर गाता है।

तुमने ही तो पागलपन का सगीत रचा,
करुणा बन गलना तुमने मुझको सिखलाया,
तुमने ही मुझको यहाँ धूल से ममता दी,
रगो मे जलना मैंने तुमसे ही पाया !

उस ज्ञान और भ्रम मे ही तो तुम चेतन हो,
जिनसे मै बरबस उठता-गिरता रहता हूँ !
निज खड खड मे हे असीम, तुम हे अखड
अर्पित मेरा अस्तित्व, इसे स्वीकार करो !

कवि

डा० हरिवशराय बच्चन

जन्म, सन् १६०७, प्रयाग। हालावादी कवि के रूप में विख्यात। प्रमुख रचनाएँ निशा-निमन्त्रण, एकान्त सगीत, मधुशाला, मधुबाला, आकुल अन्तर, मिलन यामिनी, तथा प्रणय-पत्रिका आदि कविता-सग्रह। भारत सरकार के विदेश मत्रालय में हिन्दी के विशेष पदाधिकारी।

गीत

आज चचला की बाहो मे उलझा दी है बाहे मैने।

डाल प्रलोभन मे अपना मन
सरल फिसल नीचे को जाना,
कुछ हिम्मत का काम समझते
पाँव पतन की ओर बढाना,

झुके वही जिस थल झुकने मे
ऊपर को उठना पडता है,
आज चचला की बाहो में उलझा दी है बाहे मैंने ।

कॉंटो से जो डरनेवाले
मत कलियो से नेह लगाएँ,
घाव नही है जिन हाथो मे
उनमे किस दिन फूल सुहाए,
नगी तलवारो के साए
मे सुदरता विहरण करती,
और किसी ने पाई हो पर कभी नही पाई है भय ने ।
आज चचला की बाहो मे उलझा दी है वाहे मैंने ।

विजली से अनुराग जिसे हो
उठकर आसमान को नापे,
आग चले आलिगन करने
तव क्या आँच धुएँ से काँपे,
साफ, उजालेवाले, रक्षित
पथ मरो के कदर के है,
जिन पर खतरे जान नही था, छोड कभी दी राहे मैंने ।
आज चचला की बाहो मे उलझा दी है वाहे मैंने ।

बूंद पडी वर्षा की, चूहें
और छछूंदर विल में भागे,
देख नही पाते वे कुछ भी
जड पामर प्राणो के आगे,

घन से होड लगाने को तन
मोह छोड निर्मम अवर में
वज्र प्रहार सहन करते है वैनतेय के पैने डैने ।।
आज चचला की बाहो मे उलझा दी है बाहे मैने ।।